भक्त किरात और नन्दी वैश्य

प्राचीन काल में नन्दी नामक वैश्य अपनी नगरी के एक धनी-मानी और प्रतिष्ठित पुरुष थे। वे बड़े सदाचारी और वर्णाश्रमोचित धर्म का दृढ़ता से पालन करते थे। प्रतिदिन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् शङ्कर की पूजा करने का तो उन्होंने नियम ही ले रक्खा था। जिस मन्दिर में नन्दी वैश्य पूजा करते थे, वह बस्ती से कुछ दूर जंगल में था। एक दिन की बात है कि कोई किरात शिकार खेलता हुआ उधर से निकला। वह प्राणियों की हिंसा करता था। उसकी बुद्धि जड़प्राय थी, उसमें विवेक का लेश भी नहीं था। दोपहर का समय था, वह भूख-प्यास से व्याकुल हो रहा था। मन्दिर के पास आकर वहाँ के सरोवर में उसने स्नान किया और जलपान करके अपनी प्यास बुझायी। जब वह वहाँ से लौटने लगा, तब उसकी दृष्टि मन्दिर पर पड़ी और उसके मन में यह इच्छा हुई कि मन्दिर में चलकर भगवान् का दर्शन कर लूँ। उसने मन्दिर में जाकर भगवान् शङ्कर का दर्शन किया और अपनी बुद्धि के अनुसार उनकी पूजा की।

उसने कैसी पूजा की होगी, इसका अनुमान सहज ही लग सकता है। न उसके पास पूजा की सामग्री थी और न वह उसे जानता ही था। किस सामग्री का उपयोग किस विधि से किया जाता है, यह जानने की भी उसे आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। उसने देखा, लोगों ने स्नान कराकर बिल्वपत्र आदि चढ़ाये हैं। उसने एक हाथ से बिल्वपत्र तोड़ा, दूसरे हाथ में मांस पहले से ही था। गण्डूष-जल (मुख में भरे जल) से स्नान कराकर उसने बिल्वपत्र और मांस चढ़ा दिया। वह मांसभोजी भील था। उसको इस बात का पता नहीं था कि देवता को मांस नहीं चढ़ाना चाहिये। यही काम यदि कोई जान-बूझकर करे तो वह दोष का भागी होता है। परंतु उसने तो भाव से, अपनी शक्ति और ज्ञान के अनुसार पूजा की थी। बड़ा आनन्द हुआ उसे, प्रेममुग्ध होकर वह शिवलिङ्ग के सम्मुख साष्टाङ्ग दण्डवत् करने लगा। उसने दृढ़ता से यह निश्चय किया कि आज से मैं प्रतिदिन भगवान् शङ्कर की पूजा करूँगा। उसका यह निश्चय अविचल था; क्योंकि यह उसके गम्भीर अन्तस्तल की प्रेरणा थी।

दूसरे दिन प्रातःकाल नन्दी वैश्य पूजा करने आये। मन्दिर की स्थिति देखकर वे अवाक् रह गये। कल की पूजा-सामग्री इधर-उधर बिखरी पड़ी थी। मांस के टुकड़े भी इधर-उधर पड़े थे। उन्होंने सोचा-'यह क्या हुआ? मेरी पूजा में ही कोई त्रुटि हुई होगी, जिसका यह फल है। इस प्रकार मन्दिर को भ्रष्ट करनेवाला विघ्न तो कभी नहीं हुआ था। अवश्य ही यह मेरा दुर्भाग्य है।' यही सब सोचते हुए उन्होंने मन्दिर साफ किया और पुनः स्नानादि करके भगवान् की पूजा की। घर लौटकर उन्होंने पुरोहित से सारा समाचार कह सुनाया और बड़ी चिन्ता प्रकट की। पुरोहित को क्या पता था कि इस काम में भी किसी का भक्ति-भाव हो सकता है। उन्होंने कहा-'अवश्य ही यह

किसी मूर्ख का काम है; नहीं तो रत्नों को इधर-उधर बिखेरकर भला कोई मन्दिर को अपवित्र एवं भ्रष्ट क्यों करता। चलो, कल हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे और देखेंगे कि कौन दुष्ट ऐसा काम करता है।' नन्दी वैश्य ने बड़े दुःख से वह रात्रि व्यतीत की।

प्रातःकाल होते-न-होते नन्दी वैश्य अपने पुरोहित को लेकर शिव-मन्दिर पहुँच गये। देखा वही हालत आज भी थी, जो कल थी। वहाँ मार्जन आदि करके नन्दी ने शिवजी की पञ्चोपचार पूजा की और रुद्राभिषेक किया। ब्राह्मण स्तुतिपाठ करने लगे। वेद-मन्त्रों की ध्वनि से वह जंगल गूँज उठा। सबकी आँख लगी हुई थी कि देखें मन्दिर को भ्रष्ट करनेवाला कब किधर से आता है।

दोपहर के समय किरात आया। उसकी आकृति बड़ी भयङ्कर थी। हाथों में धनुष-बाण लिये हुए था। शङ्कर भगवान् की कुछ ऐसी लीला ही थी कि किरात को देखकर सब-के-सब डर गये और एक कोने में जा छिपे। उनके देखते-देखते किरात ने उनकी की हुई पूजा नष्ट-भ्रष्ट कर दी एवं गण्डूष-जल (मुख में रखे जल) से स्नान कराकर बिल्वपत्र और मांस चढ़ाया। जब वह साष्टाङ्ग प्रणाम करके चला गया, तब नन्दी वैश्य और ब्राह्मणों के जी-में-जी आया और सब बस्ती में लौट आये। नन्दी को व्यवस्था मिली कि उस लिङ्गमूर्ति को ही अपने घर ले आना चाहिये। व्यवस्था के अनुसार शिवलिङ्ग वहाँ से उखाड़ लाया गया और नन्दी वैश्य के घर पर विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा की गयी। उनके घर सोने और मणि-रत्नों की कमी तो थी ही नहीं, संकोच छोड़कर उनका उपयोग किया गया; परन्तु भगवान् को धन-सम्पत्ति के अतिक्ति कुछ और भी चाहिये।

प्रतिदिन के नियमानुसार किरात अपने समय पर भगवान् शङ्कर की पूजा करने आया; परंतु मूर्ति को न पाकर सोचने लगा-'यह क्या, भगवान् तो आज हैं ही नहीं।' मन्दिर का एक-एक कोना छान डाला, एक-एक छिद्र को उसने ध्यानपूर्वक देखा; परंतु सब व्यर्थ। उसके भगवान् उसे नहीं मिले। किरात ही दृष्टि में वह मूर्ति नहीं थी, स्वयं भगवान् थे। अपने प्राणों के लिये वह भगवान् की पूजा नहीं करता था, किंतु उसने अपने प्राणों को उन पर निछावर कर रक्खा था। अपने जीवन-सर्वस्व प्रभु को न पाकर वह विह्वल हो गया और बड़े आर्तस्वर से पुकारने लगा-'महादेव! शम्भो! मुझे छोड़कर तुम कहाँ चले गये? प्रभो! अब एक क्षण का भी विलम्ब सहन नहीं होता। मेरे प्राण तड़फड़ा रहे हैं, छाती फटी जा रही है, आँखों से कुछ सूझता नहीं। मेरी करुणपुकार सुनो, मुझे जीवनदान दो। अपने दर्शन से मेरी आँखें तृप्त करो! जगन्नाथ! त्रिपुरान्तक! यदि तुम्हारे दर्शन नहीं होंगे तो मैं जीकर क्या करूँगा? मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ और सच कहता हूँ, तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता।' इस प्रकार प्रार्थना करते-करते किरात की आँखों से आँसुओं की धारा अविरल रूप से बहने लगी। वह विकल हो गया, अपने हाथों को पटकने तथा शरीर को पीटने लगा। उसने कहा-'अपनी जान में मैंने कोई अपराध नहीं किया है; फिर क्या कारण है कि तुम चले गये? अच्छा, यही सही; मैं तो तुम्हारी पूजा

करूँगा ही।' किरात ने अपने हाथ से शरीर का बहुत-सा मांस काटकर उस स्थान पर रक्खा, जहाँ पहले शिवलिङ्ग था। स्वस्थ हृदय से, क्योंकि अब उसने प्राणत्याग का निश्चय कर लिया था, फिर सरोवर में स्नान करके सदा की भाँति पूजा की और साष्टाङ्ग प्रणाम करके ध्यान करने बैठ गया।

किरात के चित्त में अब एक भी वासना अवशेष न थी, वह केवल भगवान् का दर्शन चाहता था। ध्यान अथवा मृत्यु, यही उसकी साधना थी। यही कारण है कि बिना किसी विक्षेप के उसने लक्ष्यवेध कर लिया और उसका चित्त भगवान् के लीला-लोक में विचरण करने लगा। उसकी अन्तर्दृष्टि भगवान् के कर्पूरोज्ज्वल, भस्मभूषित, गङ्गा-तरङ्ग-रमणीय जटाकलाप से शोभित एवं सर्प-परिवेष्टित अङ्गों की सौन्दर्यसुधा का पान करने लगी और वह उनकी लीला में सम्मिलित होकर विविध प्रकार से उनकी सेवा करने लगा। उसे बाह्य जगत्, शरीर अथवा अपने आपकी सुधि नहीं थी; वह केवल अन्तर्जगत् की अमृतमयी सुरभि से छक रहा था। बाहर से देखने पर उसका शरीर रोमाञ्चित था, आँखों से आँसू की बूँदें ढुलक रही थीं, रोम-रोम से आनन्द की धारा फूट पड़ती थी। उस क्रूरकर्मा किरात के अन्तराल में इतना माधुर्य कहाँ सो रहा था, इसे कौन जान सकता है।

किरात की तन्मयता देखकर शिवजी ने अपनी समाधि भङ्ग की। वे उसके चर्मचक्षुओं के सामने प्रकट हो गये। उनके ललाटदेशस्थित चन्द्र ने अपनी सुधामयी रश्मियों से किरात की काया उज्ज्वल कर दी। उसके शरीर का अणु-अणु बदलकर अमृतमय हो गया। परन्तु उसकी समाधि ज्यों-की-त्यों थी। भगवान् ने मानो अपनी अनुपस्थिति के दोष का परिमार्जन करते हुए किरात से कहा-'महाप्राज्ञ! वीर!! मैं तुम्हारे भक्तिभाव और प्रेम का ऋणी हूँ, तुम्हारी जो बड़ी-से-बड़ी अभिलाषा हो, वह मुझसे कहो; मैं तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकता हूँ।' भगवान् की वाणी और सङ्कल्प ने किरात को बाहर देखने के लिये विवश किया। परंतु जब उसने जाना कि मैं जो भीतर देख रहा था, वही बाहर भी है, तब तो उसकी प्रेमभक्ति पराकाष्ठा को पहुँच गयी और वह सर्वाङ्ग से नमस्कार करता हुआ श्रीभगवान् के चरणों में लोट गया। भगवान् के प्रेमपूर्वक उठाने पर और प्रेरणा करने पर उसने प्रार्थना की-'भगवन्! मैं तुम्हारा दास हूँ, तुम मेरे स्वामी हो-मेरा यह भाव सर्वदा बना रहे और मुझे चाहे जितनी बार जन्म लेना पड़े, मैं तुम्हारी सेवा में संलग्न रहूँ। प्रतिक्षण मेरे हृदय में तुम्हारा प्रेम बढ़ता ही रहे। प्रभो! तुम्हीं मेरी दयामयी माँ हो और तुम्हीं मेरे न्यायशील पिता हो। मेरे सहायक बन्धु और प्राणप्रिय सखा भी तुम्हीं हो। मेरे गुरुदेव, मेरे इष्टदेव और मेरे मन्त्र भी तुम्हीं हो। तुम्हारे अतिरिक्त तीनों लोकों में और कुछ नहीं है, और तीनों लोक भी कुछ नहीं हैं, केवल तुम्हीं हो।' किरात की निष्काम प्रेमपूर्ण प्रार्थना सुनकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सदा के लिये उसे अपना पार्षद बना लिया। उसे पार्षदरूप में प्राप्त करके भगवान् शङ्कर को बड़ा आनन्द हुआ और वे अपने उल्लास को प्रकट करने के लिये डमरू बजाने लगे।

भगवान् के डमरू के साथ ही तीनों लोकों में भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग और नगारे बजने लगे। सर्वत्र 'जय-जय' की ध्वनि होने लगी। शिवभक्तों के चित्त में आनन्द की बाढ़ आ गयी। यह आनन्द-कोलाहल तत्क्षण नन्दी वैश्य के घर पहुँच गया। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अविलम्ब वहाँ पहुँचे। किरात के भक्तिभाव और भगवत्-प्रसाद को देखकर उनका हृदय गद्गद हो गया और जो कुछ अज्ञानरूप मल था उनके चित्त में कि 'भगवान् धन आदि से प्राप्त हो सकते हैं' वह सब धुल गया। वे मुग्ध होकर किरात की स्तुति करने लगे-'हे तपस्वी! तुम भगवान् के परम भक्त हो; तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् यहाँ प्रकट हुए हैं। मैं तुम्हारी शरण में हूँ। अब तुम्हीं मुझे भगवान् के चरणों में अर्पित करो।' नन्दी की बात से किरात को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने तत्क्षण नन्दी का हाथ पकड़कर भगवान् के चरणों में उपस्थित किया। उस समय भोलेबाबा सचमुच भोले बन गये। उन्होंने किरात से पूछा-'ये कौन सज्जन हैं? मेरे गणों में इन्हें लाने की क्या आवश्यकता थी?' किरात ने कहा-'प्रभो! ये आपके सेवक हैं, प्रतिदिन रत्न-माणिक्य से आपकी पूजा करते थे। आप इनको पहचानिये और स्वीकार कीजिये।' शङ्कर ने हँसते हुए कहा-'मुझे तो इनकी बहुत कम याद पड़ती है। तुम तो मेरे प्रेमी हो, सखा हो; परन्तु ये कौन हैं? देखो भाई! जो निष्काम हैं, निष्कपट हैं और हृदय से मेरा स्मरण करते हैं, वे ही मुझे प्यारे हैं; मैं उन्हीं को पहचानता हूँ।' किरात ने प्रार्थना की-'भगवन्! मैं आपका भक्त हूँ और यह मेरा प्रेमी है। आपने मुझे स्वीकार किया और मैंने इसे, हम दोनों ही आपके पार्षद हैं।' अब तो भगवान् शङ्कर को बोलने के लिये कोई स्थान ही नहीं था। भक्त की स्वीकृति भगवान् की स्वीकृति से बढ़कर होती है। किरात के मुँह से यह बात निकलते ही सारे संसार में फैल गयी। लोग शत-शत मुख से प्रशंसा करने लगे कि किरात ने नन्दी वैश्य का उद्धार कर दिया।

उसी समय बहुत से ज्योतिर्मय विमान वहाँ आ गये। भगवान् शङ्कर का सारूप्य प्राप्त करके दोनों भक्त उनके साथ कैलास गये और माँ पार्वती के द्वारा सत्कृत होकर वहीं निवास करने लगे। यही दोनों भक्त भगवान् शङ्कर के गणों में 'नन्दी'* और 'महाकाल'* के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार नन्दी की भक्ति के द्वारा किरात की भक्ति को उत्तेजित करके और किरात की भक्ति के द्वारा नन्दी की भक्ति को पूर्ण करके आशुतोष भगवान् शङ्कर ने दोनों को स्वरूप-दान किया और कृतकृत्य बनाया।

(उपर्युक्त कथा गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'भक्तचरितांक' से ली गयी है।)

❀❀❀❀❀❀

* कल्पभेद से 'नन्दी' और 'महाकाल' की कथाएँ अलग-अलग तरह से प्राप्त होती हैं।